शील, करुणा और मैत्री का 'संगम' है भारत का स्वधर्म

इस लेख की पिछली दो कडिय़ों में देश की वर्तमान अवस्था को भारत के स्वधर्म की रोशनी में परखने का आग्रह किया गया है। आज जो हो रहा है वह सही है या गलत, गर्व का विषय है या शर्म का, इसका

इस लेख की पिछली दो कडिय़ों में देश की वर्तमान अवस्था को भारत के स्वधर्म की रोशनी में परखने का आग्रह किया गया है। आज जो हो रहा है वह सही है या गलत, गर्व का विषय है या शर्म का, इसका फैसला हम अपने-अपने आग्रह-दुराग्रह के आधार पर नहीं कर सकते। इसे हम केवल किसी बनी-बनाई या उधार ली विचारधारा की कसौटी पर नहीं कस सकते, किसी ग्रंथ या ईष्ट देवता के शब्दों से नहीं नाप सकते।

किसी देश की यात्रा को जांचने-परखने का पैमाना उसका स्वधर्म ही हो सकता है। पहले धर्म और स्वधर्म की व्याख्या के बाद लेख की पिछली कड़ी इस निष्कर्ष पर पहुंची थी कि भारत गणराज्य का स्वधर्म न तो प्राचीन भारतीय ग्रंथों में है, न ही यूरोप की आधुनिक विचारधाराओं में। राष्ट्रीय आंदोलन के दौरान हमारी सभ्यता की धरोहर और पश्चिमी विचारों के बीच संवाद और संघर्ष की ऐतिहासिक प्रक्रिया से भारत गणराज्य का स्वधर्म निर्मित हुआ।

अब पूछ सकते हैं कि इस प्रक्रिया से उपजा भारत का स्वधर्म आखिर है क्या? अगर सार रूप में कहें तो भारतीय सभ्यता के शाश्वत मूल्यों में से तीन-शील, करुणा और मैत्री के त्रिवेणी संगम में भारत का

स्वधर्म खोजा जा सकता है। 26 जनवरी, 1950 को भारत गणतंत्र बना था, उसकी जड़ें उस दिन अंगीकृत किए गए आधुनिक संविधान या औपनिवेशिक राज के दौरान आधुनिक पश्चिम के विचारों तक सिमटी हुई नहीं हैं। भारतीय गणतंत्र के आदर्शों में कम से कम तीन हजार साल की हमारी विचार परंपरा से उपजे तीन आदर्श प्रतिङ्क्षबबित होते हैं। लेकिन यह तीनों आदर्श अपने प्राचीन स्वरूप में हमारे संविधान में दोहराए नहीं गए हैं।

आजादी के आंदोलन के दौरान इन आदर्शों की सफाई की गई, और आधुनिक यूरोप के तीन आदर्शों से इनका गहरा संवाद हुआ। फ्रांसीसी क्रांति के स्वतंत्रता, समता और बंधुत्व के उद्घोष को भारतीय मानस ने अपने तरीके से सुना। बीसवीं सदी की उदारवाद, समाजवाद और सैकुलरवाद की विचारधाराओं को अपनी वैचारिक छलनी से छाना। इस मंथन से लोकतंत्र, कल्याणकारी राज्य और सर्वधर्म समभाव की देसी लेकिन आधुनिक समझ बनी।

मैत्री की अवधारणा का स्पष्ट निरूपण बुद्ध धर्मदर्शन में हुआ है। मैत्री महज दोस्ती या स्नेह नहीं है। मैत्री का सौहार्द तृष्णावश नहीं होता, बल्कि परोपकार के लिए होता है। मैत्री का स्नेह मोहवश नहीं होता किन्तु ज्ञानपूर्वक होता है। मैत्री का स्वभाव अद्वेष है और यह अलोभ-युक्त होता है। जीवों का उपकार करना, उनके सुख की कामना करना, द्वेष और द्रोह का परित्याग, इसके लक्षण हैं। यह केवल व्यक्तिगत आदर्श नहीं है, इस आदर्श को हमारी परंपरा में राजधर्म का रूप दिया गया। अशोक और अकबर के राज में सभी धर्मावलम्बियों के प्रति समभाव की परंपरा इसी आदर्श से प्रेरित है। बाबा साहब

अम्बेडकर ने स्पष्ट किया था कि उनके लिए बंधुत्व का आदर्श बुद्ध दर्शन में मैत्री की अवधारणा से प्रेरित था।

भारत के संविधान के मूल विचार में आया सर्वधर्म समभाव का विचार (और बाद में इसे दिया गया 'सैकुलरवाद' या पंथ निरपेक्षता का नाम) दरअसल पश्चिम के सैकुलरिज्म का अनुवाद नहीं है। हमारे संविधान निर्माता जानते थे कि चर्च-राज्य संबंध की समस्या यूरोप की है, हमारी नहीं। आधुनिक भारत की समस्या है अलग-अलग धर्मावलंबियों के बीच सौहार्द बनाए रखने की। हमारे देश में विविध तरह की धार्मिक विविधता है। यहां अनेक पंथ या मजहब हैं, और अलग-अलग तरह के पंथ या मजहब हैं।

हमारी जनता की गहरी धार्मिक आस्था है। सभी धार्मिक समुदाय सार्वजनिक रूप से धार्मिक आस्था का व्यवहार और प्रदर्शन करते हैं। इनमें से कई समुदायों का एक-दूसरे से सौहार्द के साथ-साथ झगड़े का इतिहास रहा है। इसलिए हमारी चुनौती है अलग-अलग मत और धर्मावलंबियों के बीच समभाव स्थापित करना, घृणा और हिंसा को रोकना, धार्मिक संस्थाओं का नियमन करना और धार्मिक समुदायों में अंदरूनी कुरीतियों का सुधार करना। इसलिए आस्थाहीन या अनीश्वरवादी सैकुलरवाद हमारी समस्या का समाधान नहीं है।

भारत के स्वधर्म में है एक सर्वधर्मिता की देशज दृष्टि जो धार्मिकता का सम्मान करती है, सभी पंथों के प्रति समभाव रखती है, जो मैत्री भाव से पैदा होती है और देशधर्मी है। मैत्री के विचार की इस आधुनिक व्याख्या के चलते हमारे संविधान में कोई राज धर्म नहीं है,

सभी धर्मावलंम्बियों को समान नागरिकता दी गई है, सभी को धार्मिक स्वतंत्रता के तहत उपासना, धार्मिक आचार-व्यवहार का अधिकार प्राप्त है, प्रत्येक धार्मिक समुदाय को अपनी धार्मिक व्यवस्था और संस्थाएं बनाए रखने का अधिकार है और धार्मिक अल्पसंख्यकों को विशेष सुरक्षा दी गई है।

इसी तरह करुणा का विचार हमारे संविधान में व्णत सामाजिक, ॠथक और शैक्षणिक समता के मूल में है। सामान्यत: समता या साम्य के विचार की जड़ें आधुनिक यूरोप के समाजवाद या साम्यवाद में तलाशी गई हैं। पहली नजर में ऐसा लग सकता है कि प्राचीन भारतीय चिंतन में बराबरी या साम्य का विचार है ही नहीं। ईश्वर के सामने सब समान हैं, यह विचार तो था लेकिन सांसारिक वस्तुओं और धन-दौलत के बंटवारे के मामले में समता का विचार बिल्कुल नहीं था। लेकिन अगर हम गहरे उतरें तो पाएंगे कि करुणा का विचार हमारी परंपरा में व्याप्त है।

विनोबा भावे कहते थे, ''जैसे राम की माता कौशल्या और कृष्ण की माता यशोदा थीं, उसी तरह साम्य की माता करुणा हैं।'' करुणा के अवतार बुद्ध हैं। इस समझ में करुणा का मतलब दया नहीं है। पराए दुख को देखकर सत्पुरुषों के ह्रदय का जो कम्पन होता है उसे 'करुणा' कहते हैं।

मैत्री और करुणा की तरह शील को भी एक व्यक्ति के गुण की तरह देखा गया है। शीलवान यानी उत्तम आचरण वाला व्यक्ति। भारतीय परंपरा में अनेक किस्म के शील की व्याख्या की गई है। लेकिन यह

अवधारणा हमें राजतंत्र में राजा और गणतंत्र में गण यानी प्रजा के गुणों की ओर भी ले जाती है। बेशक लोकतंत्र का विचार आधुनिक है, और इसकी संस्थाएं पश्चिमी व्यवस्था से उधार ली गई हैं, लेकिन प्राचीन भारत में राजधर्म और सल्तनत तथा मुगल काल में सुलतान के गुण-दोष की व्याख्या हमारे आधुनिक लोकतंत्र की समझ का आधार है।

आधुनिक अर्थ में गणतंत्र का अर्थ वह नहीं है जो प्राचीन भारतीय गणतंत्र में था, लेकिन स्वयं बाबा साहब अंबेडकर ने आज की व्यवस्था के लिए प्राचीन गणतंत्र के अनुभव की प्रासंगिकता को रेखांकित किया था। इसीलिए भारतीय लोकतंत्र ने पश्चिमी लोकतंत्र की काया को तो अपना लिया लेकिन उसमें अपने प्राण फूंके। अब हम आखिरी सवाल की ओर बढ़ सकते हैं : क्या पिछले कुछ वर्षों में भारत का बदलता स्वरूप हमारे इस स्वधर्म के अनुरूप है?

योगेन्द्र यादव